# अलवर रियासत संक्षिप्त परिचय

*डॉ. गिरधारी लाल मीणा

**शोध सारांश**

अलवर रियासत राजपूताने के उत्तरी–पूर्वी भाग में स्थित है। यह दक्षिण से उत्तर की ओर 27.5'' उत्तरी अक्षांश से 28.17'' उत्तरी अक्षांश तक तथा पश्चिम से पूर्व की ओर 76.10'' पूर्वी अक्षांश से 77.15'' पूर्वी देशान्तर तक फैला हुआ है। यह उत्तर से दक्षिण की ओर 80 मील लम्बा और पश्चिम से पूर्व की ओर 60 मील चौड़ा है।

इसके उत्तर में अंग्रेजी जिला गुडगांव, जयपुर का कोटकासिम परगना, नाभा राज्य का बावल परगना, इसके पूर्व में जयपुर तथा गुडगांव एवं पश्चिम में जयपुर, नाभा तथा पटियाला स्थित थे। इसका क्षेत्रफल लगभग 3213 वर्गमील था। इस का उस समय आकार चौकोर था इसकी उत्तर से दक्षिण की लम्बाई 80 मील तथा चौड़ाई 60 मील थी।

महाभारत में पूर्वी राजस्थान को मत्स्य प्रदेश बतलाया गया हैं। कनिंगम ने भी इस प्रदेश का प्राचीन नाम मत्स्य देश बतालाया है। महाभारत के युद्ध से पहले राजा विराट के पिता वेणु ने इस प्रदेश पर मत्स्यपुरी नाम नगर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया था। कालान्तर में यही स्थान माचेडी कहलाने लगा, जो बाद में राजगढ़ परगने के अधीन जाना जाने लगा।

तीसरी शताब्दी में इस प्रदेश पर गुर्जर प्रतिहार वंशीय क्षत्रियों का अधिकार हो गया और गुर्जर नरेश बाघराज ने मत्स्यपुरी (माचेडी) से 3 मील पश्चिम में एक नया गढ़ (नगर) बसाया एवं राजा राजदेव ने इस नगर का जीर्णोद्वार करवाकर इसे राजगढ़ नाम दिया। आज इसे पुराना राजगढ़ के नाम से जाना जाता है। पांचवी शताब्दी में यहां मोर ध्वज का राज्य था, जो सम्राट पृथ्वीराज की उप पीढ़ी पूर्व में हुआ था। छठी शताब्दी में इस देश पर भाटी क्षत्रियों का अधिकार था। इस वंश का प्रसिद्ध राजा शालिवाहन था। इसी ने शालिवाहनपुर नाम का नगर बसाया जो आजकल बहरोड़ कहलाता है।

राजौरगढ़ के शिलालेख से पता चलता है कि सन् 959 में इस प्रदेश पर गुर्जर प्रतिहार वंश के नरेश सावर के पुत्र मथनदेव का अधिकार था, जो कन्नौज नरेश विजयपाल देव का सामन्त था। इसकी राजधानी राजौरगढ़ (वर्तमान राजपुर) थी। वहां अब भी उस समय का नीलकंठ नामक शिव मंदिर विद्यमान है।

पृथ्वीराज रासों ने इस क्षेत्र को मेवात के नाम से उल्लेखित किया है। 11वीं शताब्दी के अन्त में मेवात का स्वामी महेश अजमेर राज्य के बीसलदेव चौहान के अधीन था। उसके वंशज मंगल को दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान ने हराया था।

मुस्लिम इतिहासकारों ने मेवात का उल्लेख सर्वप्रथम शमसुद्दीन अल्तमश के मेवात पर अधिक को बतलाते हुए तारीखे फिरोज शाही मे किया है। सुल्तान गयासुद्दीन बलवन के समय मेवातियों ने दिल्ली व आस–पास के क्षेत्रों में बड़ा उपद्रव मचा रखा था। अतः बलबन ने हाँसी व रेवाड़ी का हाकिम होने के नाते मेवातियों का दमन किया फिर

1266 ई. में उसने उनका इस शक्ति के साथ दमन किया कि वे आगामी 100 वर्षों तक फिर सिर नहीं उठा सके।

अलवर एवं भरतपुर में मेवों की संख्या काफी रही है। मेव वे लोग हैं जो मुस्लिम काल में हिन्दू से मुसलमान बनाये गये। इनके रीति–रिवाज हिन्दुओं से बहुत मिलते जुलते है। विवाह के समय जहाँ मौलवी निकाह पढ़ाता है, वहाँ पंडित फेरे भी डलवाते हैं। मेवों के नाम भी हिन्दुओं की तरह ही होते हैं। स्त्रियों में 'चन्द्रबदनी', पुरूषों में 'सूरज', ''नारान'' इस प्रकार के नाम अब भी मिलते हैं। कालान्तर में इन्हें 'सूरज खाँ' और 'नारान खाँ' में बदल दिया गया। किन्तु आज तक मेवों की बहुत से बाते हिन्दुओं से मिलती–जुलती है। भारत का विभाजन होने से पूर्व मुस्लिम लीग का जो प्रचार हुआ, उसके कारण मेवों की भावना परिवर्तित हो गई, उनमें कट्टरता आ गई और हिन्दुओं को वे अपना शत्रु समझने लगे। एक समय ऐसा भी आया जब 'मेविस्तान' का सपना भी देखा जाने लगा। सन् 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर अलवर व भरतपुर का मेवात क्षेत्र मेवों से खाली हो गया था।

14वीं शताब्दी तक मेवातियों को दिल्ली के सुल्तानों के अनेक आक्रमणों का सामना करना पड़ा। 1450 ई. में मेवात के शासक अहमद खाँ को दिल्ली के सुल्तान बहलोत लोदी की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। 1482 ई. में अलावल खाँ खानराजा ने अलवर को निकुंभ राजपूतों से छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया।

अलावल खाँ का पुत्र हसन खाँ मेवाती बड़ा ही वीर, प्रतापी था। उसने 1526 ई. में पानीपत की लड़ाई में इब्राहिम लोदी की ओर से और1527 ई. में खानवा की लड़ाईं में राणा सांग की ओर से बाबर के विरूद्ध युद्ध में भाग लिया था। वह खानवा की लड़ाई में 17 मार्च, 1527 ई. को वीर गति को प्राप्त हुआ। इसके साथ ही मेवात में मेवातियों के शासन का अन्त और मुगलों का आधिपत्य हो गया।

मुगल प्रभाव में आने के बाद तिजारा व अलवर पर मुगल फौजदार नियुक्त होते रहे, जो मेवातियों को मनमाने ढ़ंग से तंग करते रहे। शेरशाह सूरी का प्रसिद्ध सेनापति और कुशल प्रशासक हेमू बनिया इसी क्षेत्र में स्थित माचेड़ी नामक स्थान का निवासी था, लेकिन अभाग्यवश वह पानीपत के युद्ध में हार गया।

मेवात से बाबर को 8,49,050 रू.थी। तिजारा में कुल 18 महल थे, जिसमें 253 गाँव सम्मिलित थे। क्षेत्रफल 1,25,600 एकड़ एवं मालगुजारी 8,07,332 रू. वार्षिक थी। स्वयं अकबर 1579 ई. में फतहपुर सीकरी जाते वक्त यहाँ ठहरा था। औरगंजेब ने एक बार इस क्षेत्र को सवाई जयसिंह की जागीर में मिला दिया था, परन्तु इसके सामरिक महत्व को देखते हुए उसने इसे शीघ्र ही वापस ले लिया।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद इस क्षेत्र पर मुगल पकड़ धीरे–धीरे ढ़ीली पड़ने लगी। अतः 1720 ई. में जाटों ने चूडामन के नेतृत्व में बादशाह मोहम्मद शाह के समय तिजारा को लूट लिया एवं बाद में उन्होंने बानसूर, किशनगढ़, मण्डार, बहरोड़, तिजारा, हाजीपुर, रायपुर आदि स्थानों पर कब्जा कर लिया। 1761 ई. में भरतपुर के शासक सूरज मल ने अलवर दुर्ग पर कब्जा कर लिया जो उसके अधीन करीब 9 वर्षों तक रहा। 1769 ई. में मुगल सेनापति मिर्जा नफज खाँ ने माचेडी के राव प्रताप सिंह नरूका की सहायता से अलवर राज्य पर पुनः कब्जा कर लिया। यही प्रताप सिंह नरूका आगे चलकर अलवर राज्य का संस्थापक बना।

अलवर राज्य का संस्थापक प्रतापसिंह आमेर नरेश उदय कर्ण के बड़े पुत्र बरसिंह की 15वीं पीढ़ी में था। अलवर के राजा कछवाहा राजवंश की लालावत नरूका शाखा से सम्बन्धित थे। बरसिंह के पौत्र नरू राजा से नरूका शाखा एवं नरू राजा के पुत्र राव लाला से लालावत नरूका शाखा चली। अलवर के राजा इसी लालावत नरूका से सम्बन्धित थे।

राव राजा प्रताप सिंह जिन्होंने अलवर पर 1775 से 1790 ई. तक राज्य किया, का जन्म 3 मई, 1740 को हुआ।

अपने पिता मोहब्बत सिंह की मृत्यु के बाद वह सन् 1756 में माचेड़ी की गद्दी पर बैठा। उस वक्त माचेड़ी की जागीर में कुल ढ़ाई गाँव–माचेड़ी, राजगढ़, व आधा राजपुर सम्मिलित थे तथा यह जागीर जयपुर राज्य के अधीन थी। प्रताप सिंह के समकालीन जयपुर नरेश महाराजा सवाई माधोसिंह, पृथ्वीसिंह तथा प्रताप सिंह थे। प्रताप सिंह ने अपने साहस, भुजबल तथा चतुराई से एक नये राज्य की स्थापना 25 नवम्बर, 1775 ई. को की, जो अलवर राज्य कहलाया।

आरम्भ में प्रताप सिंह माधोसिंह की सेवा में रहा। सबसे पहले उसने उणियारा के उपद्रवी नरूकों का दमन किया। इसके बाद जब 1759 ई. में मराठों ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया तो जयपुर राज्य से अपनी घिरी हुई सेना की सहायता हेतु जो टुकड़ी भेजी उसमें प्रतापसिंह भी था। इस सेना ने 18 नवम्बर 1759 ई. के युद्ध में मराठों की सेना को परास्त किया। इस युद्ध में वीरता दिखलाने के कारण प्रताप सिंह की इज्जत एवं रूतबा जयपुर दरबार में बढ़ गया।

प्रतापसिंह की बढ़ती इज्जत से जयपुर के जागीरदार ईर्ष्या करने लगे और वे महाराज माधोसिंह के कान उसके विरूद्ध भरने लगे जिससे स्वयं महाराज उससे सशंकित हो उठे। अतः माधोसिंह ने शिकार के बहाने उसके प्राण लेने चाहे, लेकिन वह बाल–बाल बच गया। इसके बाद वह भरतपुर महाराज सूरजमल की सेवा में चला गया। इससे नाराज होकर माधोसिंह ने उसकी माचेड़ी की जागीर जप्त कर ली अतः भरतपुर नरेश ने उसे 7 मील दूर डेहरा गाँवा आजीविका के लिए दे दिया।

सूरजमल के बाद उसका पुत्र जवाहर सिंह भरतपुर की गद्दी पर बैठा, जो जयपुर के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं रखना चाहता था। अतः 1767 ई. में हुए मांवडा मंढोली (भरतपुर–जयपुर) युद्ध में प्रतापसिंह की बहादुरी से प्रसन्न होकर माधोसिंह ने उसे माचेड़ी की जागीर लौटा दी व उसे 'रावराजा' की उपाधि से विभूषित किया। इस युद्ध के कुछ ही दिन बाद महाराजा माधोसिंह की मृत्यु हो गई और 1768 ई. में उसका अवयस्क बड़ा पुत्र पृथ्वीसिंह गद्दी पर बैठा। उसकी अवयस्कता के कारण राज्य प्रबन्ध का भार उनकी माता चूँड़ावत रानी को सौंपा गया।

प्रताप सिंह बहुत महत्वाकांक्षी था, अतः उसने जयपुर नरेश पृथ्वीसिंह की बाल्यावस्था का लाभ उठाकर मुगलों से सम्पर्क स्थापित कर लिया। 1770 ई. में मुगल सेनापति नफज खाँ ने मराठों की सहायता से भरतपुर नरेश नवलसिंह पर आक्रमण किया तो प्रताप सिंह ने इस अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने दिया और उसने नफजखाँ को भरतपुर के विरूद्ध सहायता प्रदान की। फलतः नजफ खाँ (1774 ई.) की सिफारिश पर बादशाह शाहआलम द्वितीय ने उसे 'राव राजा' की उपाधि, पाँच हजारी मनसब और शाही मनसब प्रदान किया। इस प्रकार प्रताप सिंह अब माचेड़ी का स्वतंत्र राजा बन गया। अपनी गद्दी नशीनी का उत्सव उसने बड़े धूम–धाम से मनाया।

जब प्रताप सिंह स्वतंत्र शासक बन गया तो उसने अपने आस–पास के प्रदेशों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। इसी नीति के तहत उसने अलवर किले पर अपना अधिकार किया। अलवर का किला 1761 ई. से ही भरतपुर के कब्जे में था, परन्तु 1774 ई. तक भरतपुर राज्य की शक्ति नजफ खाँ और मराठों से युद्ध के कारण कमजोर हो गई थी। अलवर किले में स्थित भरतपुर के सैनिकों को बहुत समय से वेतन भी नहीं मिला था। उन्होनें वेतन के लिए बहुत बार भरतपुर नरेश से प्रार्थना की परन्तु सब निरर्थक ही रही। अपनी उपेक्षा देखकर दुर्ग रक्षकों ने प्रताप सिंह को अपना भावी स्वामी मानकर अलवर दुर्ग उसे सौंप दिया। अपनी सेना के साथ प्रताप सिंह ने माघ शीर्ष शुक्ला 3 संवत् 1832, सोमवार को अलवर दुर्ग में प्रवेश किया (25 दिसम्बर 1775) और माचेड़ी के स्थान पर अलवर को ही अपनी राजधानी बना कर अलवर राज्य की स्थापना की और किले में ही अपना राज्याभिषेक करवाया।

जयपुर से स्वतंत्र हो जाने के बाद भी प्रताप सिंह ने वहां के राज्य शासन में अपना हस्तक्षेप नहीं छोड़ा। वह अपने

आप को महाराज पृथ्वी सिंह का 'संरक्षक' समझता था। इससे जयपुर राज्य व उसके बीच तनाव बढ़ता ही जा रहा था। 1778 ई. में जयपुर की सेना ने मुगलों के साथ मिलकर रसिया नामक स्थान पर उस पर हमला कर दिया। प्रताप सिंह तो बच निकला, परन्तु उसकी 20 लाख की संपत्ति और तोपें विरोधियों के हाथ लगी। अंत में प्रताप सिंह ने मुगल सेनापति नजफ खाँ को 2 लाख रूपया हर्जाना देकर उससे संधि कर ली।

1778 ई. में जयपुर नरेश पृथ्वी सिंह की मृत्यु हो गई एवं उसका छोटा भाई प्रताप सिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा, परन्तु अलवर के प्रताप सिंह ने पृथ्वीसिंह के एक पुत्र मानसिंह को जयपुर की गद्दी का दावेदार बना दिया। मानसिंह को जयपुर की गद्दी पर बैठाने के लिए उसने मराठों से मिलकर अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उसे सफलता नहीं मिल सकी। प्रताप सिंह नरूका महाराजा सिंधिया को जयपुर पर आक्रमण करने के लिए निरन्तर उकसाता रहा, जिसके फलस्वरूप मराठों एवं जयपुर के बीच 1787 ई. में तूँगाा नामक स्थान पर युद्ध हुआ। जोधपुर राज्य की समय पर सहायता मिलने से जयपुर इस युद्ध में विजयी रहा, परन्तु 1790 ई. में महादजी सिंधिया ने पाटन के युद्ध में जयपुर को हराकर तूँगा में हुई अपनी पराजय का बदला ले लिया। इस अवसर से लाभ उठाकर प्रतापसिंह नरूका ने जयपुर के कुछ इलाके अपने राज्य में मिला लिये। पाटन के युद्ध के कुछ महिनों बाद ही 51 वर्ष की आयु में 25 जनवरी, 1791 ई. सोमवार (पोष वदी 6 संवत् 1847) को अलवर दुर्ग में उसकी मृत्यु हो गई।

प्रतापसिंह बड़ा ही वीर, साहसी और कूटनीतिज्ञ था। उसने अपने बल–बूते पर एक स्वंतत्र रियासत की स्थापना की। वह बड़ा ही अवसरवादी था और इसी कारण समय–समय पर जाटों, मुगलों, मराठों व कछवाहों का पक्ष लेकर लड़ता रहा व अपने राज्य का विस्तार करता रहा। इसी कारण ढ़ाई गाँव का जागीदार होते हुए भी वह जयपुर राज्य से अलग एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर सका।

प्रतापसिंह के बाद अलवर की गद्दी पर बख्तावर सिंह (1791–1815 ई.) बैठे। महाराजा प्रताप सिंह के कोई पुत्र नहीं था, अतः थाने के धीरसिंह ठाकुर के पुत्र का चुनाव 1790 ई. में उन्होंने योग्यता के आधार पर अपने उत्तराधिकारी के रूप में किया। बखतावरसिंह के गद्दी पर बैठते ही स्वर्गीय महाराजा प्रतापसिंह के एक दीवान रामसेवक ने राज्य में विद्रोह कर दिया एवं मराठों की सहायता से राजगढ़ पर आक्रमण कर दिया। इस वक्त बख्तावरसिंह ने बड़े धैर्य व चातुर्य से काम कर रामसेवक को छलबल से गिरफ्तार करवा कर मरवा डाला एवं मराठों को समझा बुझाकर राजगढ़ का घेरा उठवा दिया। बख्तावसिंह को इसके अलावा जयपुर व मराठों के आक्रमणों का भी सामना करना पड़ा।

1792 ई. में तुकोजी होल्कर से दौसा में जयपुर नरेश की मुलाकात हुई। उसमें यह समझौता किया गया कि यदि तुकोजी होल्कर जयपुर के वे प्रदेश जो अलवर राज्य ने दबा रखे हैं, दिलाने में मदद करे तो आधे प्रदेश उन्हीं (तुकोजी होल्कर को) दे दिये जावेंग। इस संधि के बाद तुकोजी होल्कर ने बापूराव होल्कर के नेतृत्व में एक सेना भेज दी जिसने कुम्भलगढ़ तथा अन्य कई दुर्ग अलवर राज्य से छीन लिये।

बख्तावरसिंह का विवाह कुचामण (जोधपुर राज्य) के जागीरदार के बेटी से 1793 ई. में हुआ। विवाह से लौटते वक्त जपयुर में महाराजा प्रतापसिंह ने आदर सत्कार करने के बहाने बख्तावर सिंह को रोक लिया और गिरफ्तारी का भय दिखाकर गूढ़ा, संथल, बावड़ी, खेड़ा, दुब्बी और सिकराय दुर्ग पर अपना अधिकार लिखवा लिया। ये सस्मत प्रदेश पहले जयपुर राज्य के अन्तर्ग ही थे।

1803 ई. में सिंधिया के सेनापति गोपाल भाऊ ने कठूमर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया और वहाँ नियुक्त सभी राजपूतों को मार डाला। इस समय तक अंग्रेजों का दबदबा भी काफी बढ़ चुका था, अतः चारों ओर से अपने आपकों संकटों से घिरा पाकर बख्तावर सिंह ने अंग्रेजों को अपनी सेना ने जनरल लेक के नेतृत्व में कठूमर पर

आक्रमण किया और मराठों को वहाँ से भगा दिया। लेक का मराठों से दूसरा मुकाबला नवम्बर 1803 में अलवर से 20 मील दूर लालसवाड़ी नामक स्थान पर हुआ। युद्ध में अंग्रेज सेनापति को विजय प्राप्त हुई। इतिहास में इस युद्ध का बड़ा महत्व है, क्योंकि इस हार से समस्त उत्तर भारत में मराठों के सितारे सदैव के लिए अस्त हो गये और दिल्ली पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया।

लासवाड़ी के युद्ध में अलवर के वकील अहमद बक्शखाँ ने अंग्रेजों को खाद्य सामग्री जुटाने में तथा मराठों की गतिविधियों की सूचना देने में काफी सहायता की। अंग्रेजों को इस युद्ध में अलवर की सेना की भी सहायता मिली। बख्तावर सिंह की उपरोक्त सेवा के कारण अंग्रेजों ने अलवर के उत्तर–पश्चिम में राठ का परगना, हरियाणा जिले में लोहारू तथा फिरोजपुर देकर उसे स्वतंत्र नवाब बना दिया गया।

इस युद्ध के बाद 14 नवम्बर, 1803 को अलवर और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच एक संधि हो गई। इस संधि के अनुसार संकट के समय एक दूसरे को सैनिक एवं अन्य सहायता देना तय हुआ। इस संधि के साथ अंग्रेजों ने अलवर को कई इलाके और दिये जिससे राज्य का विस्तार हो गया। इसके साथ ही अलवर राज्य अब जयपुर व मराठों के हमलों से सुरक्षित हो गया।

15 अक्टूबर 1805 में अंग्रेज सरकार ने दादरी, बुधवाना और भावना के परगने अलवर राज्य से लेकर बदले में बख्तावर सिंह को तिजारा, टपूकड़ा और कठूमर के परगने दे दिये। बख्तावर सिंह ने एक लाख रूपये अंग्रेज सरकार को देकर किशनगढ़ तथा वहाँ के दुर्ग की सामग्री प्राप्त कर ली। अलवर राज्य की सीमा में इसके बाद कोई बड़ा फेर–बदल नहीं हुआ।

अंग्रेजों के साथ संधि के बाद अलवर राज्य पर अंग्रेजों का वर्चस्व बढ़ने लगा और ऐसे कई मौके आये जब अंग्रेजों ने बख्तावर सिंह को स्वतंत्र निर्णय करने से रोका। उदाहरण के लिए निम्न घटनाएँ बतलाई जा सकती है।

1806 ई. में जोधपुर महाराज मानसिंह व जयपुर महाराज जगत सिंह के मध्य कृष्णा कुमारी को लेकर युद्ध की स्थिति पैदा हो गई, तब जयपुर महाराज जगतसिंह ने अलवर महाराज बख्तावर सिंह से सहायता माँगीं बख्तावर सिंह ने संधि के मुताबिक अंग्रेज रेजिडेन्ट से युद्ध में भाग लेने की सलाह ली, परन्तु रेजिडेन्ट के इन्कार करने पर महाराजा को चुप बैठ जाना पड़ा।

1807 ई. में जब अमीर खाँ ने जयपुर राज्य पर हमला किया, तब भी चाहते हुए भी बख्तावर सिंह जयपुर राज्य की सहायता नहीं कर सका क्योंकि उसे अंग्रेज रेजिडेन्ट से इसकी अनुमति नहीं मिल सकी थी।

1811 ई. में तिजारा के मेवों ने फिर अलवर राज्य के विरूद्ध विद्रोह कर दिया तब अंग्रेज सरकार ने कर्नल मेल की अध्यक्षता में सेना भेजी। इस सेना ने मेवों के उपद्रवों को दबा दिया। इसी वर्ष बख्तावर सिंह ने जयपुर राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की दृष्टि से खुशाली राय बोहरा को मंत्री बनाना चाहा और उसे एक सेना सहित जयपुर पर आक्रमण के लिए भेज दिया। अंग्रेजों के विरोध करने पर उसे सेना वापस बुलानी पड़ी एवं अपनी इस मूर्खतापूर्ण कार्यवाही के कारण उसे अंग्रेजों से 16 जुलाई, 1811 को एक नई संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार उस पर वह पाबन्दी लगा दी गई कि वह बिना अंग्रेज सरकार की स्वीकृति के अन्य राज्योयं से राजनीतिक व्यवहार नहीं करेगा।

1812 ई. में बख्तावर सिंह ने जयपुर राज्य के दुब्बी एवं सिकराय पर अधिकार कर लिया। परन्तु अंग्रेजों ने महाराजा को धमकी दी कि यदि ये इलाके जयपुर राज्य को वापस नहीं किये गये तो न केवल अंग्रेजों द्वारा उसे दिए गए इलाके वापस ले लिए जावेंगे, बल्कि सारा अलवर राज्य ही अंग्रेजी राज्य में मिला लिया जावेगा। बख्तावर सिंह ने

तुरन्त दोनों इलाके जयपुर को सौंप दियें

विलियम मूर ने आगरा से एडिन बर्ग अपने भाई के नाम एक पत्र 2 जून 1857 को लिखा कि दिल्ली से विद्रोहियों को दूर रखने के लिए अलवर व भरतपुर की सेनाओं को आगरा सम्भाग के कमीश्नर हार्वे तथा भरतपुर रेजीडेन्सी के कप्तान निक्शन की निगरानी में गुडगाँव जिले के होड़ल नामक स्थान पर तैनात किया गया, परन्तु जब 31 मई, 1857 को विद्रोही होड़ल पहुचें तो अलवर की सेना विद्रोहियों से मिल गई। इस पर भरतपुर की सेना ने भी उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। विलियम मूर ने एक दूसरे पत्र जो उन्होंने बोम्बे टाइम्स को लिखा, के अनुसार जब कोटा की सेना ने 3 जुलाई, 1857 को विद्रोह किया तो हमें अलवर राज्य की सेना के बारे में कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ, जबकि इन विद्रोहियों को दबाने के लिए बहुत बड़े–बड़े वायदे किये थे। परिणामस्वरूप हमारे लिए तीसरी यूरोपियन सेना के अलावा और कोई अन्य विकल्प नहीं रहा।

राजा बन्नेसिंह ने आगरा में स्थित अंग्रेजी सेना की सहायता के लिए 1200 सैनिकों की एक टुकड़ी भेजी। इसमें 800 पैदल सैनिक (मुख्य रूप से मुसलमान) तथा 400 घुड़सवार (सभी राजपूत) शामिल थे। सहायता हेतु इन सैनिकों के साथ 4 तोपें भी भेजी। परन्तु अलवर की इस सेना से अंग्रेजों को कोई राहत नहीं मिली, क्योंकि मुसलमान सैनिक भाग गये और नीमच व नसीराबाद के विद्रोहियों ने इस सेना को अछनेरा के पास घेर लिया, जिससे इसे करारी हार खानी पड़ी।

11 जुलाई 1857 ई. में राजा बन्नेसिंह की मृत्यु हो गई। बन्नेसिंह का एक मात्र पुत्र शिवदान सिंह उसकी जगह अलवर की गद्दी पर बैठा। वह उस समय 12 वर्ष का था। उसकी नाबालिक अवस्था में राज्य का प्रशासन 1857 से 1863 तक रिजेन्सी परिषद् के नियंत्रण में रहा। मुस्लिम मंत्रियों ने इस अवधि में प्रशासन का अधिकार प्राप्त कर लिया, परन्तु इनके बढ़ते प्रभाव से राजपूत सशंकित हो उठे, जैसा कि 26 अगस्त 1858 के हिन्दू पेट्रियट ने विवरण देते हुए अलवर राज्य में राज विद्रोह का संकेत दिया और बतलाया कि इस समय राज्य में दो दल मुसलमानों और राजपूतों के स्पष्ट रूप से बन गये हैं। इस स्थिति में प्रतिनिधि मण्डल की सहायता करने व परामर्श देने के लिए एक राजनैतिक एजेण्ट की नियुक्ति की गई। सितम्बर 1863 ई. में बालिग हो जाने के कारण श्योदान सिंह जी को प्रशासन के पूरे अधिकार प्रदान किये गये। परन्तु पोलिटिकल एजेण्ट दो साल तक राज्य में बना रहा।

श्योदान सिंह की फिजूल खर्ची तथा वंशानुगत कई जमींदारियों के अधिग्रहण के कारण कई राजपूत सरदार उनके विरूद्ध हो गये। परिणामस्वरूप सरकार का हस्तक्षेत्र आवश्यक हो गया। अतः 1870 ई. में राजा को अधिकारों एवं शक्तियों से वंचित कर दिया गया और एक अंग्रेज अधिकारी कैप्टन क्रेडल की अध्यक्षता में 5 सरदारों की एक राज्य परिषद् नियुक्त की, जिसे शासन के सब अधिकार दे दिये गए। महाराजा के कुछ जागीरदारों ने मिलकर अंग्रेजों का विरोध किया। इस पर अंग्रेजों ने धमकी दी कि यदि राजा ने अपना रवैया नहीं बदला तो उसे देश निकाला दे दिया जावेगा। इस पर महाराजा शाँत हो गया। श्योदान सिंह के लिए 15 हजार रूपये मासिक की वृत्ति निश्चित कर दी गई और इसी के साथ उसके उपयोग हेतु नौकर चाकरों की एक टोली भी उसको आवंटित कर दी गई।

श्योदान सिंह की 11 अक्टूबर 1874 ई. को बिना वारिस के मृत्यु हो गई। राज गद्दी के उत्तराधिकार के लिए थाना परिवार के हरदेव सिंह के पुत्र मंगल सिंह और बीजवाड़ के ठाकुर लखधीर सिंह ने अपना–अपना दाव प्रस्तुत किया। मंगल सिंह के साथ बहुमत होने के कारण दि. 4 दिसम्बर, 1874 ई. को उसे सिहांसन पर बैठाया गया। उस समय वह केवल 15 वर्ष का था। उसकी नाबालिग अवस्था में राज्य का प्रशासन पोलिटिकल एजेण्ट की अध्यक्षता में एक परिषद् के हाथ में रहा। 1875 ई. में राजकुमारों की शिक्षा के लिए अजमेर में मेयो कॉलेज की स्थापना हुई। महाराव मंगल सिंह को विद्या –अध्ययन हेतु मेयो कॉलेज अजमेर भेजा गया। वह उस कॉलेज में भर्ती होने वाला प्रथम विद्यार्थी था। परन्तु वह साल भर वह साल भर बाद ही कॉलेज छोड़कर अलवर लौट आया।

मंगल सिंह को प्रशासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ 1877 ई. में प्राप्त हुई। इसके शासन काल की प्रमुख घटनाएँ रही– कलकत्ता ढलाई कारखाने से अलवर डिजाईन के चाँदी के सिक्कों की 10 मई 1877 ई. को नेटिव कोइनेज एक्ट के अधीन निकासी तथा 17 अप्रैल, 1879 ई. का नमक समझौता, जिसके अधीन राज्य में नमक बनाने पर निषेद्ध लगाया गया।

मंगल सिंह की मृत्यु 22 मई 1892 ई. में हो गई। मंगल सिंह के स्थान पर उसका एकमात्र 10 वर्षीय पुत्र जयसिंह 23 मई, 1892 का अलवर की गद्दी पर बैठा। अलव9र राज्य के संस्थापक प्रताप सिंह नरूका की मृत्यु के बाद लगातार यह पांचवा शासक था जो अवयस्क अवस्था में अलवर की गद्दी पर बैठा। राज्य का प्रशासन 10 दिसम्बर, 1903 ई. को लार्ड कर्जन द्वारा उसे सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होने तक परिषद् के हाथों में रहा।

महाराजा ने शासन प्रबन्ध संभालते ही न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक कर दिया। उसने राज्य में बाल–विवाह और अनमेल विवाह पर रोक लगाकर एक ऐसे सुधारों का श्रीगणेश किया, जो आगे जाकर शारदा एक्ट के रूप में देश के सामने आया। उसने मृत्यु भोज पर रोक लगा दी एवं इस रोक का राजघराने में भी कड़ाई से पालन किया गया।

महाराव बन्नेसिंह के समय 1838 ई. में राज्य की भाषा हिन्दी से बदलकर (फारसी) उर्दू कर दी थी। महाराजा जयसिंह ने 70 वर्ष बाद 1908 ई. में उर्दू के स्थान पर राजभाषा पुनः हिन्दी कर दी। इतना ही नहीं उसने यह भी आज्ञा जारी कर दी कि हिन्दी से अनभिज्ञ किसी भी व्यक्ति को राज्य सेवा में न लिया जावे। उसने अलवर नगर में सड़कों, बगीचों और विभिन्न सरकारी भवनों के नाम भी शुद्ध हिन्दी में रखे।

महाराजा ने राज्य में ग्राम–पंचायतों का जाल बिछा दिया। उसने पंचायतों को दीवानी तथा फौजदारी अधिकार देकर सशक्त बनाने का भी प्रयत्न किया। रूपारेल नदी के पानी के उपयोग के संबंध में अलवर व भरतपुर रियासतों के मध्य एक विवाद काफी समय से चल रहा था। जयसिंह 1905 ई. में भारत सरकार के सहयोग से इस विवाद का हल निकलवाने में सफल रहा। इससे अलवर राज्य की यथेष्ट भूमि को सिंचाई का लाभ मिला। महाराजा ने करीब 50 लाख रूपये की लागत से जयसमंद, प्रेम सिन्धु, मानसरोवर और हंस–सरोवर आदि बाँध बनवाकर राज्य में सिंचाई के साधनों का व्यापक विस्तार किया। फरवरी, 1920 ई. में वापसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने महाराजा के इन कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा कि महाराजा ने अनेक बाँध बनवाकर अलवर राज्य की अकाल के भय से मुक्त कर दिया है।

अलवर राज्य में जन–जागृति का श्रीगणेश किसान–आन्दोलनों से हुआ इसके अलावा अंग्रेजी शासन काल में व्याप्त साम्प्रदायिक भावना बीसवीं शताब्दी की तीसरी दशाब्दी तक देशी रियासतों में भी फैल चुकी थी। अलवर राज्य भी इसका अपवाद नहीं रहा। राज्य के किसानों का असन्तोष, खिलाफत आन्दोलन के अवसाद तथा हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य ने अलवर के मुसलमानों को आन्दोलन के लिए उकसाया।

अलवर राज्य के गाँव नीमचाणा के किसानों ने आन्दोलन में प्रमुख भूमिका निभाई तथा आन्दोलन का नेतृत्व किया। 15 मई 1925 ई. को 350 घरों वाले सम्पूर्ण गाँव को आग के हवाले कर दिया गया। नीमूचाणा के असहाय एवं गरीब किसानों को मौत के घाट उतार दिया गया। पाँच से छः सौ लोगों की हत्या कर दी गई एवं सैकड़ों मवेशियों को मार दिया गया। गाँव को जलाये जाने के कारण जन व धन की बहुत हानि हुई। इस घटना के कारण भारतीय रियासतों के लोगों में भय और आंतक फैल गया। यहां तक कि महात्मा गाँधीजी ने भी कहा था'' यदि सभी प्रकाशित विवरण सत्य हैं तो ये दोहरे शासन का प्रमाण है।

बढ़ते हुए जमींदारी असन्तोष के कारण राज्य के उत्तरी भाग के एक ग्राम–महसौली में 1933 ई. में साम्प्रदायिक

तनाव बढ़ गया और यह शीघ्र ही तिजारा, लक्ष्मणगढ़ और रामगढ़ जिलों में भी फैला गया। आन्दोलनकारियों ने हिन्दुओं पर आक्रमण किया तथा उनकी सम्पत्तियों को लूट लिया। मेव विद्रोहियों की संस्थान लगभग 80,000 थी। जब राज्य प्रशासन स्थिति पर नियंत्रण प्राप्त नहीं कर सका तो अंग्रेजी सेनाओं की माँग हुई और उन्हें बुलाया गया। अन्त में पुनः शान्ति स्थापित हुई। अलवर दरबार से दिसम्बर, 1933 ई. तक के अभियान के खर्चे के रूप में 2,22,195 रूपये मांगें जिनमें से फरवरी 1934 के अंत तक 16,565 रूपये ही वसूल हो पाये।

राज्य में इन घटनाओं के कारण भारत सरकार ने राजस्व व पुलिस विभागों में अंग्रेज अधिकारियों को नियुक्त किया। कैप्टीन ए.डब्ल्यू. इब्बस्टन को राजस्व विभाग तथा मैकनमारा को पुलिस विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। इन कार्यवाहियों से अलवर नरेश खुश नहीं, थे तब भी मार्च 1933 ई. में फ्रांसिस बटनियर वाइली को अलवर राज्य का प्रधानमंत्री महाराजा की इच्छा के विरूद्ध बना दिया गया।

शताब्दी के चौथे दशक में अलवर के महाराजा जयसिंह की राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति सहानुभूति जगी। अलवर में 20 अप्रैल, 1933 को सम्पन्न गंगा माता दरबार में उन्होंने भविष्य में स्वदेशी वस्त्रों का उपयोग करने का संकल्प लिया तथा इलाहाबाद के एकता सम्मेलन में भारतीय रियासतों की दयनीय दशा का हवाला देते हुए उन्होंने कहा ''आखिरकार हमारी भारतीय रियासतों में चाहें वे अच्छी तरह शासित हैं या बुरी तरह शासित हैं, जहाँ तक हमारे वित्तीय मामले हैं, जहाँ तक हमारे सेना है या अन्य कोई क्षेत्र, सिवाय हमारे विदेशी सम्बन्धों के मामलों में, जो हमारी सन्धियों के अनुसार अंग्रेज शासन में निहित है, सुरक्षित हैं।

महाराजा की इन कार्यवाहियों ने अंग्रेज सरकार को चौकन्ना कर दिया एवं राज्य में फैले साम्प्रदायिक असंतोष ने अंग्रेजी हस्तक्षेप के लिए बहाना तैयार कर दिया। मई 1933 में राजपूताना के गवर्नर जनरल के एजेन्ट ओजिलवी ने अलवर नरेश से दो में से एक मार्ग चुनने के लिए कहा। उसने कहा कि या तो वह अलवर को दो साल के लिए छोड़ दे या राज्य की दशा की जाँच करने के लिए एक कमीशन को स्वीकार करें। यह नोटिस अन्तिम नोटिस था। इसके अनुसार राजा को अपना निर्णय सिर्फ 24 घण्टों के भीतर करना था।

महाराजा ने वायसराय को सरकार के इस निर्णय के लिए कारण बताने के लिए प्रार्थना की, परन्तु इससे कोई फायदा नहीं हुआ। अब राजा–महाराजाओं की आँखे खुली और उन्होंने उस समय से ही आगामी गम्भीर खतरों को समझ लिया।

महाराजा पर भारत सरकार के किसी मुख्यालय अथवा गवर्नर जनरल के एजेन्ट से मिलने पर रोक लगा दी गई। इसके परिणामस्वरूप वह अलवर छोड़कर बम्बई चला गया व फिर वहां से पेरिस व लन्दन चला गया। वह जनवरी, 1934 में विदेश से वापस आया परन्तु उसे राज्य के अन्दर घुसने नहीं दिया गया। वह पुनः विदेश चला गया एवं सरकार ने उसके देश निकाले की अवधि को अनिश्चित काल तक बढ़ा दिया। महाराजा के इस निर्वासन के पीछे अंग्रेजों की नाराजगी और अलवर के एक भूतपूर्व नवाब गजनफर अली खाँ का षड्यंत्र था। यही गजनफर अली खाँ बाद में मुस्लिम लीग का एक प्रमुख नेता और जिन्ना का दायाँ हाथ बना।

निर्वासन की अवस्था में महाराजा जयसिंह का 20 मई, 1937 ई. में पेरिस में निधन हो गया। 10 जून, 1937 ई. को उनका अलवर में दाह–संस्कार किया गया। 17 मार्च, 1911 को जन्मे तेजसिंह को 22 जुलाई 1937 में राज सिंहासन पर बैठाया गया, लेकिन राज्य के शासन की बागड़ोर भारत हेतु प्रथम बार कार्यकारी परिषद् का गठन किया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध की घोषणा के तत्काल बाद महाराजा ने अपने समस्त संसाधनों को सरकार की इच्छा पर छोड़ दिया। अलवर की जय पलटन को मित्र राष्ट्रों की सहायता करने के लिए विदेशों में भेजा गया। यह पलटन

अबीसिनिया, मिश्र, पेलेस्टीन, सीरिया, एजीन द्वीप तथा डोडेस्थनीज द्वीपों में लड़ाई में भाग लेकर पाँच वर्ष पश्चात् 3 दिसम्बर, 1945 ई. को अलवर लौटी। इसके अतिरिक्त राज्य ने युद्ध के प्रारम्भ होने के समय इण्डियन आर्मी के लिए 14,000 से भी अधिक रंगरूट भर्ती किये। यह युद्ध कोष के लिए दिए विशाल योगदान के अतिरिक्त योगदान था। अगस्त 1947 में राज्य का विलय भारतीय गणतंत्र में हो गया।

***व्याख्यता**
**इतिहास विभाग**
**राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा (राज.)**

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द : राजपूताने का इतिहास (भाग 1), तृतीय संस्करण, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1979,
2. ओझा, गोरीशंकर हीराचन्द : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, चतुर्थ संस्करण, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1991.
3. ओझा, गोरीशंकर हीराचन्द : उदयपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग 1, खण्ड 1) वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1979.
4. ओझा, गोरीशंकर हीराचन्द : जोधपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास भाग 4, खण्ड 1–2), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1965.
5. ओझा, गोरीशंकर हीराचन्द : डूंगरपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग 3, खण्ड 1), वैदिक यंत्रालाय, अजमेर, 1972.
6. ओझा, गोरीशंकर हीराचन्द : प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग 3 खण्ड 3), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1978.
7. ओझा, गोरीशंकर हीराचन्द : बांसवाड़ा राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास, भाग 3, खण्ड 2,), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1982.